महुआ के बहाने एक शैक्षिक पड़ताल

महेश झरबड़े



मार्च का महीना यानी स्कूली बच्चों की परीक्षा का समय। तपती दोपहर और पसीने से सराबोर करती गर्मी।

प्राथमिक शाला कोयलबुड्डी के शिक्षक सगनसिंह अखंडे स्कूल पहुँचते हैं। दो दिन बाद स्कूल में 5वीं कक्षा के बच्चों की परीक्षा है। करिश्मा आज स्कूल नहीं आई है। सर उसके घर फ़ोन करते हैं। उसकी माँ बताती है कि वो महुआ बीनने गई है। सर उसे ढूँढ़ते हुए उसके खेत पहुँचते हैं। करिश्मा खेत में महुआ बीनती मिलती है। परीक्षा के दो दिन शेष हैं और करिश्मा सुबह 6 बजे से शाम तक महुआ बीन रही है। क्या महुआ की अहमियत परीक्षा से ज़्यादा है?

चमेली 9वीं कक्षा में पढ़ती है। आज उसका पेपर है। उसे परीक्षा देने 8 किलोमीटर दूर साइकिल चलाकर जाना है। उसके परिवार में 6 लोग हैं पर कोई भी घर पर नहीं है। उसे सबके लिए खाना पकाना है, अपनी तैयारी करनी है और 10 बजे तक परीक्षा केन्द्र पहुँचना है। वो कहती है, “घर के सब लोग दोपहर तक लौटकर आएँगे, भूखे होंगे तो खाना बनाना ही पड़ेगा। सब जंगल में हैं और महुआ बीन रहे हैं। मैं परीक्षा देकर आऊँगी फिर पेड़ के नीचे जाऊँगी। महुआ तो लाना पड़ेगा न!”



हांड़ीपानी गाँव में 4-5 बच्चे गलियों में घूम रहे थे। उनसे पूछा, "किसे ढूँढ़ रहे हो?" उन्होंने बताया, "सर और मैडम स्कूल में बैठे हैं। बच्चों को बुलाने आए हैं पर सबके घर बन्द हैं, सब महुआ बीनने गए हैं कोई मिल ही नहीं रहा है।"



आरती, रानी, प्रमिला, अर्चना, कविता और माधुरी का कक्षा आठवीं का पेपर था। लौटते समय मैंने उन्हें रोक कर पूछा, "क्या आज शाम को हम लोग मिल सकते हैं?" इसपर कविता बोली, "सर, टाइम ही नहीं है।"

"कहाँ गया टाइम", पूछने पर बोली, "पूरा टाइम महुआ बीनने में जा रहा है।"

मार्च के दूसरे सप्ताह से अप्रैल के दूसरे सप्ताह तक मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में ये रोज़ का आलम होता है। इन महीनों में ये समय थोड़ा कम-ज़्यादा या आगे-पीछे हो सकता है, पर अमूमन इन्हीं महीनों के 15-20 दिन पूरा ग्रामीण जीवन जंगलों में पारिवारिक आय के लिए संघर्ष कर रहा होता है।

ज़्यादातर पेड़ अपने फलों के कारण पहचाने जाते हैं। दरअसल ये गुल्ली का पेड़ होता है और महुआ इसका फूल है फिर भी इस पेड़ को महुआ के नाम से ही ज़्यादा जाना जाता है। महुआ मध्य भारत के उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वन का एक प्रमुख पेड़ है जिसका वैज्ञानिक नाम मधुका लोंगफोलिया (Madhuca longifolia) है।

सम्भवतः हम में से काफ़ी लोग महुआ के बारे जानते हैं और यह भी कि महुआ ग्रामीण जीवन को किस हद तक प्रभावित करता है। फिर भी इस लेख के बहाने महुआ से जुड़े कुछ पहलुओं पर अपने अनुभव साझा कर रहा हूँ। यूँ तो महुआ कई आयामों से समुदाय का अभिन्न अंग है पर मैं शिक्षा के इर्द-गिर्द महुआ के प्रभाव को यहाँ रखने का प्रयास कर रहा हूँ।

स्कूली बच्चे और महुआ

ईशाना दूसरी कक्षा में पढ़ती है। उसने अपने पापा से कहा है कि उसे साइकिल ख़रीदनी है, लेकिन महुआ शुरू होने के बाद अब वो कह रही है, "मैं अपने पैसे से अपनी साइकिल ख़रीदूँगी।" इसलिए वो रोज़ सुबह एक बड़ी डलिया और एक चुरकू (महुआ बीनने में इस्तेमाल होने वाली छोटी डलिया) लेकर जंगल जाती है, महुआ बीनकर वापिस आती है और फिर तैयार होकर स्कूल पहुँचती है। ईशाना की तरह ही कई बच्चे हैं जो इस समय डबल शिफ्ट में काम करते हैं। कई बार ये थोड़ा कष्टदायक होता है पर बच्चों के सन्दर्भ में ज़्यादातर इसका रिश्ता ख़ुशी और उत्सुकता से ही जुड़ता है। बच्चे इस वक़्त का बेसब्री से इन्तज़ार करते हैं।

स्कूल की तरह ही महुए का मौसम भी बच्चों को काफ़ी कुछ सिखाता है। सुबह जल्दी जागना, जंगल जाना, अपनी क्षमतानुसार महुआ बीनना, अपने हिस्से का महुआ सुखाना, बोरी में भरकर रखना, परिवार की मौजूदगी में अपना महुआ बेचना और फिर उसी रुपए से अपनी



पसन्दीदा चीज़ें व सामग्री ख़रीदना। बहुत कम समय में कितना कुछ दे देता है यह मौसम बच्चों को! एक ही परिवार में रहने वाले सभी लोग मिलकर जंगल जाते हैं लेकिन अपने-अपने हिस्से का महुआ अलग रखते हैं। इसके एक हिस्से का उपयोग अपने पसन्दीदा सामान ख़रीदने और दूसरे का परिवार के लिए इंजिन, मोटर पम्प, फ्रिज, बाइक जैसा कोई बड़ा सामान ख़रीदने में होता है। एक समय में सब लोग अलग-अलग होते हैं और दूसरे वक़्त में अलग-अलग होकर भी एक साथ। राष्ट्रीयता के लिए अनेकता में एकता का सन्देश देने वाला इससे अच्छा उदाहरण भला और क्या हो सकता है!

जैसे स्कूल में कोई पाठ पढ़कर बच्चे ख़ुश होते हैं उनका आत्मविश्वास बढ़ता है, ठीक उसी तरह एक बोरी महुआ इकट्ठा करना भी उन्हें आत्मविश्वास और सन्तोष से भर देता है। किसने हर दिन कितना महुआ बीना, इस सप्ताह उसकी बोरी कितनी भर पाई, महुआ बेचकर उसे क्या लेना है, इस तरह की चर्चाएँ इन दिनों बच्चों की ज़ुबान पर होती हैं। साथ ही रात अँधेरे के समय जंगल में जाने के दौरान भालू का मिलना, जंगली सूअर से सामना, पत्तों में साँप का दिख जाना जैसे अनगिनत वास्तविक क़िस्से-कहानियाँ इन दिनों समुदाय में सुनने को मिल जाते हैं। महुए का मौसम अपने ही परिवेश में रहते हुए सन्दर्भ के साथ सीखने का पूरा माहौल देता है, पर अफ़सोस प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में महुआ से जुड़ा एक भी पाठ नहीं है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* अपने परिचय में कहती है, "शिक्षा शिक्षार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का सन्तुलित विकास करे, इसलिए पाठ्यक्रम में विज्ञान, गणित के अलावा बुनियादी कला, शिल्प, मानविकी, खेल और फिटनेस, भाषाओं, साहित्य, संस्कृति और मूल्य का अवश्य ही समावेश किया जाए।"[1] और यह भी कि *राष्ट्रीय शिक्षा नीति* प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष ज़ोर देती है।[2] ख़ासतौर पर ग्रामीण और आदिवासी समुदायों में महुआ एक संस्कृति ही है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ रही है। पेड़





के नीचे दिनभर बैठकर महुआ बीनना एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक क्षमता है, पर अभी भी सवाल ये है कि क्या इतने महत्त्वपूर्ण विषय को कक्षा में कभी जगह मिल पाएगी?

महुआ और मौसम विज्ञान

महुआ के साथ मौसम का ज्ञान बहुत क़रीब से जुड़ा है। ये सामुदायिक ज्ञान है जो मौखिक बातचीत के माध्यम से ही बच्चों में हस्तान्तरित होता रहा है। जिस रात गर्मी तेज़ होगी, महुआ रात में ही टपक जाता है। उस दौरान लोग रात को लगभग 2 बजे या उससे भी पहले ही जंगल चले जाते हैं और महुआ बीनकर सुबह जल्दी लौट आते हैं। इसके विपरीत, जिस रात तुलनात्मक रूप से ठण्डा मौसम होता है, महुआ नहीं टपकता और तब लोग सुबह-सुबह जंगल जाते हैं और दोपहर बाद या शाम तक महुआ लेकर घर लौटते हैं। मौसम, प्रकृति और इंसान के बीच की यह साझी समझ कई सदियों से साथ-साथ सफ़र कर रही है।

जब गर्मी होती है तो महुआ जल्दी क्यों टपकता है? ठण्ड होने पर महुआ देर से क्यों टपकता है? गर्मी या ठण्ड पड़ने से महुआ बीनने वालों के काम पर कैसे असर होता है? ऐसे आधारभूत सवालों पर बच्चों के साथ लम्बी चर्चाएँ हो सकती हैं। ये चर्चाएँ न सिर्फ़ ग्रामीण जीवन को समझने में बच्चों की मदद कर सकती हैं, बल्कि शिक्षक और बच्चों के बीच भी आपसी रिश्ते को भी और मज़बूत करेंगी। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* के अनुसार, "पर्यावरण के ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा भारत के नंगे पैर चलने वाले परिस्थिति विज्ञानियों और ज़मीनी लोगों से भी सम्बन्ध रखता है।"[3] ये तथ्य इस परिवेश में काम करते हुए मुझे काफ़ी सच लगने लगा है। पर सवाल अब भी वही है कि विभिन्न परिस्थितियों के साथ अन्तःक्रिया करते हुए ग्रामीण समुदाय के बने ज्ञान, जंगलों के साथ रोज़ समय गुज़ारते हुए हासिल ज्ञान और अपनी कई पीढ़ियों से मिले ज्ञान की स्कूल में कोई अहमियत नहीं है। समाज, समुदाय लिखी हुई बातों को ही ज्ञान मानता है और लिखी हुई पाठ्यपुस्तकों में इस ज्ञान, इन अनुभवों के लिए बहुत सीमित जगह है। जब मैं बच्चों और उनके अभिभावकों से इस बारे में बात करता हूँ तो सभी यह जानकर ख़ुश होते हैं कि उनके पास भी कई तरह का ज्ञान है और यह ज्ञान भी समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण धरोहर है।

और तब वे यह भी समझ पाते हैं कि स्कूलों में, कक्षाओं में इस तरह की चर्चाओं के लिए जगह बनाना ज़रूरी है। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के लागू होने के बाद ये उम्मीद भी है कि बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा उनकी क्षेत्रीय भाषा में ही सम्पन्न होगी। उस स्थिति में, उस क्षेत्र को प्रभावित करने वाले सामाजिक, प्राकृतिक और भौगोलिक कारकों को पढ़ाई का विषय बनाया जाएगा तो अधिगम की प्रक्रिया में यह मील का पत्थर साबित हो सकता है। जो काम हमारे जीवन का हिस्सा है उसके बारे में पढ़ने, लिखने और चर्चा करने में सम्भवतः शिक्षक को उतनी मेहनत नहीं लगेगी जितनी आमतौर हिन्दी या पर्यावरण के किसी अनजान पाठ को पढ़ाने में

लगती है। *कोठारी आयोग की रिपोर्ट* में भी कहा गया है, "प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान पढ़ाने का मुख्य यह उद्देश्य होना चाहिए कि भौतिक और जैव पर्यावरण में मुख्य तथ्यों, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं की सही समझ का विकास हो सके।"[4]

कक्षा 11वीं में पढ़ने वाली रुकमनी कहती है, "जब पतझड़ शुरू होता है, पेड़ से पत्तियाँ झड़ने लगती हैं और पेड़ सुन्दर-सुन्दर गुच्छों से लद जाता है, इसे 'कूँची' कहते हैं। जिस पेड़ में जितनी ज़्यादा कूँचियाँ बनती हैं उससे उतना ज़्यादा महुआ टपकने की सम्भावना होती है। जब महुआ गिरना बन्द हो जाता है तो पेड़ पर छोटी-छोटी लाल रंग की पत्तियाँ आती हैं और कुछ दिन के लिए पेड़ एकदम लाल रंग से सजा दिखाई देता है। बाद में पत्तियाँ हरी हो जाती हैं और फिर धीरे-धीरे फल आना शुरू होते हैं। इसके बाद हरियाली के साथ पेड़ गुल्ली (महुआ का फल) से लदा दिखाई देता है। हम फिर से ख़ुश होते हैं और फिर से जंगल जाने की तैयारी करते हैं। अब गुल्ली बीनने का समय है, यह भी बाज़ार में बिकेगी क्योंकि इससे तेल निकाला जाता है।"

यही प्रक्रिया लगभग सभी पेड़ों के साथ होती है, पर महुआ का पेड़ बच्चों के जीवन से सीधा-सीधा जुड़ता है इसलिए ये प्रक्रिया वे बहुत क़रीब से देखते-समझते हैं। प्रक्रिया लेखन या कोई घटना कैसे होती है इसे समझना, ऑब्ज़र्व करना और प्रस्तुत कर पाना विज्ञान अध्ययन का महत्त्वपूर्ण आयाम माना जाता है; लेकिन क्या ये आसान है? बेशक ये मुश्किल है पर स्कूल में इसकी सम्भावना ज़रूर खोजी जा सकती है। यही बात तो *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* भी कहने की कोशिश कर रही है। "यह ज़रूरी हो गया है कि जो कुछ सिखाया जा रहा है बच्चे उसे तो सीखें ही और साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें। इसलिए शिक्षा में विषयवस्तु बढ़ाने की जगह ज़ोर इस बात पर होने की ज़्यादा ज़रूरत है कि बच्चे समस्या-समाधान और तार्किक रूप से सोचना सीखें।"[5] अपने आसपास हो रही घटनाओं पर तो बच्चों की पारखी नज़र होती ही है, ज़रूरत है सिर्फ़ उसे नज़रिया देने की। एक बार वे समझ गए कि उन्हें क्या देखना है और कैसे, उसके बाद शिक्षक के बिना भी वे कई काम कर सकते हैं।

महुआ और गणित

महुआ का हिसाब रखने के लिए बच्चे, किशोर या गाँव वाले जिस टूल का इस्तेमाल करते हैं उसका नाम है कट्टी और बोरी। कविता बताती है, "जिस बोरी में 25 किलो कनकी (टूटे चावल) आती है उस बोरी में 10-12 किलो सूखा महुआ समा जाता है। इसको हम कट्टी बोलते हैं और 50 किलो वाली बोरी में 30-32 किलो महुआ आता है। जब हमारी कट्टी भर जाती है तो हम बोरी में महुआ भरना शुरू करते हैं। अभी महुआ 30 रुपए किलो है, थोड़ा रुक कर



बेचेंगे तो 32 रुपए किलो बिक जाएगा।"



एक दिन शाम में बच्चों से हुई बातचीत में उन्होंने महुआ से जुड़ा अपना हिसाब बताया।

6वीं कक्षा के अरुण ने बताया, "मैंने महुआ बेचकर 500 रुपए के पेंट-शर्ट, 150 की टी-शर्ट, 270 की सैंडिल, 50 का बेल्ट ख़रीदा और 40 रुपए में बाल कटवाए। अभी 3 कट्टी महुआ बचा है।"

7वीं के संतुलाल ने बताया, "मैंने 2000 रुपए के महुए बेचे। 800 रुपए का कोट ख़रीदा, 200 के दो लोअर लिए, 400 का एक जीन्स लिया और 600 रुपए माँ को दे दिए। अभी 4 कट्टी महुआ बचा है। स्कूल शुरू होगा तब बेचूँगा किताब-कॉपी के लिए।"

पहली कक्षा की कृष्णा ने बताया कि उसने अभी एक झोला (लगभग 10 किलो) महुआ बेचकर पैर पट्टी (पायल) ख़रीदी है। ऐसे ही 9वीं की सुशीला ने बताया कि उसने 800 रुपए का जीन्स-टॉप व 150 का हार ख़रीदा और अभी 4 बोरी महुआ बेचना है।

ऐसे ही 22 दूसरे बच्चों ने भी महुआ बीनने, बेचकर सामान ख़रीदने और बचे हुए महुए का क्या करना है, इसकी जानकारी दी।

इस पूरी प्रक्रिया में सबसे ख़ास बात ये रही कि लगभग सभी बच्चों को ये पता था कि उन्होंने कितना महुआ बीना, कितना बेचा, कितने रुपए का कौन-सा सामान ख़रीदा, कितना महुआ बचा है और बचे हुए महुए का क्या करना है? महुआ की क़ीमत बढ़ने के लिए कब तक रुकना है, यदि क़ीमत बढ़ी तो क्या फ़ायदा होगा, घट गई तो कितने का नुक़सान, आदि। इस पूरी प्रक्रिया में जोड़ना, घटाना या कम करना, गुणा और भाग करना, लाभ-हानि आदि जैसी गणित की मूलभूत अवधारणाओं से रोज़ ही उनका सामना होता रहता है। अभिभावक भी बच्चों से अकसर ये पूछते देखे जाते हैं कि '29 रुपए को भाव से 4 किलो मौवा कित्तो को होयिगो;' या ये कि 'मोड़ा (लड़का) मैंने 31 को भाव से 5 किलो दुकान में दियो, एक 20 वाला सोडा (निरमा पैकेट), 30 के भाव से दो किलो कनकी लायो तो कित्तो रुपया होगो और कित्तो बचो।'

सम्भवतः महुआ ही ऐसा वक़्त होता है जब बच्चों और माता-पिता के बीच सबसे ज़्यादा



गणितीय बातचीत होती है। इसका एक पहलू यह भी है कि इन दिनों बच्चे अपने घर के लोगों से अपने ख़र्चे के पैसे नहीं माँगते बल्कि कई बार परिवार वालों को आइसक्रीम, लड्डू, नमकीन, आदि ख़रीदकर देते हैं। आर्थिक रूप से सशक्त होने और अपनों से बड़ों को कुछ देकर गौरवान्वित होने का अहसास वे इस दौरान कई बार जीते हैं।

अन्त में सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि महुआ / गुल्ली का पेड़ ग्रामीण परिवेश को कई तरह से समृद्ध करता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का यह प्रमुख आधार है। इससे कई तरह के खाद्य पदार्थ और पेय बनाए जाते हैं। बच्चों के जीवन से इसका काफ़ी क़रीबी रिश्ता है, इससे जुड़ी चर्चा को कक्षा में शामिल किया जाना एक संस्कृति को गौरवान्वित करना होगा और समाज के अनुसूचित जनजाति कहे जाने वाले वर्ग के प्रति सम्मान। *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह के आधार पत्र* में 'सम्मान' को परिभाषित करते हुए कहा गया है, "दूसरे का सम्मान करने तथा उसके प्रति न्याय करने का एक अर्थ यह भी है कि उससे जुड़ी ख़ास संस्कृति या समुदाय के प्रति सम्मान तथा न्याय।"[6]

सन्दर्भ

1. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, परिचय
2. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, परिचय
3. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, आवास और सीखना, सार संक्षेप
4. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005*, आवास और सीखना, पेज 2
5. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, परिचय
6. *शिक्षा के लक्ष्य : राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र*

महेश झरबड़े पिछले 15 सालों से बच्चों व युवाओं के साथ शिक्षा सम्बन्धी कामों से जुड़े रहे हैं। एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र और मुस्कान के जीवन शिक्षा पहल स्कूल में बच्चों व युवाओं के विभिन्न मुद्दों को शिक्षा के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। आदिवासी और वंचित तबक़ों के लिए किस तरह की शिक्षा हो, ये समझने का प्रयास जारी है। आपने सिनर्जी संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर इस मुद्दे को गहराई से समझने की कोशिश भी की है। बच्चों, युवाओं व ग्रामीण विकास के मुद्दों पर पढ़ने और लिखने में रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ॉउण्डेशन मध्यप्रदेश के खरगोन ज़िले में कार्यरत है।

सम्पर्क : mjharbade@gmail.com